लाल किले की प्रेक्षक ईंट

आज कहाँ से आये तुम? कहाँ छिपे अब-तक थे तुम?
क्यों रखा उपेक्षित तुमने? क्यों तड़पाया वर्षों तुमने?

पिछले दशकों की भटकन में मैंने, कोलाहल को झेला खूब ।
स्वाभिमान की अर्थियां देखीं, देखे भ्रष्ठ बिकाऊ पूत ॥

देखा मैंने जननी का ह्रास, माँ भारती का हृदय विलाप ।
विस्स्मृत होती भक्ति-आस्था, डांवाडोल होता विश्वास ॥

ऐसे कलुषित वातावरण में, चोटें मैंने खाई हैं ।
मूक दर्शक बन इस दीर्घा से, पीड़ा मैंने झेली है ॥

धन्य हुयी की आये तुम, धन्य हुयी की बोले तुम ।
झझकोरा अंतर्मन को, जगा गए अस्मिता तुम ॥

वर्षों बाद आस लगी है, निर्मल हवा की प्यास लगी है ।
मेरे रंगों को तुम बदलोगे, इक नयी उम्मीद जगी है ॥

आशा है फिर से आओगे, इसी वाणी में फिर बोलोगे ।
बदलोगे मिट्टी का रंग, जननी की सेवा का ढंग ॥

समीर खांडेकर
१५ अगस्त, २०१४